गृहस्थाश्रम में नारी की भूमिका एवं आहार संयोजन (प्रमुख स्मृतियों के विशेष संदर्भ में)।

अनुक्सा

संस्कृत विभाग

मिरांडा हाउस,दिल्ली यूनिवर्सिटी

शोध सारांश (abstract)

भूमिका –

नारी का अस्तित्व और उसका योगदान किसी भी समाज की आधारशिला को सुदृढ़ करने में अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। वह केवल गृह-परिसर तक सीमित रहने वाली इकाई नहीं है, बल्कि परिवार, संस्कार, परंपरा और सामाजिक संरचना के निर्माण में सक्रिय भूमिका निभाती है। उसकी संवेदनशीलता, श्रम, धैर्य और निर्णय-क्षमता समाज को संतुलन और स्थायित्व प्रदान करती है। नारी की भूमिका को केवल घरेलू दायित्वों तक सीमित कर देखना उसकी व्यापक सामाजिक भागीदारी को अनदेखा करना होगा। वह शिक्षा, संस्कृति, नैतिक मूल्यों और अगली पीढ़ी के निर्माण की वाहक होने के साथ-साथ सामाजिक परिवर्तन की प्रेरक शक्ति भी है। इस प्रकार, नारी समाज के विकास, नैतिक उन्नयन और सांस्कृतिक निरंतरता की एक केंद्रीय धुरी के रूप में उभरती है।

उद्देश्य -इस शोध का उद्देश्य यह है कि नारी गृहस्थाश्रम की आत्मा है, जो केवल परिवार का पोषण नहीं करती, बल्कि आहार संयोजन, संस्कार निर्माण और सामाजिक संतुलन के माध्यम से संपूर्ण समाज के विकास में केंद्रीय भूमिका निभाती है। अतः नारी का सम्मान और सशक्तिकरण ही एक आदर्श एवं संतुलित समाज की आधारशिला है

शोध प्रविधि - इस शोध-पत्र में मुख्य रूप से गुणात्मक (Qualitative) शोध पद्धति को अपनाया गया है। अध्ययन के दौरान विषय को केवल शाब्दिक स्तर पर नहीं, बल्कि उसके सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भों में समझने का प्रयास किया गया है।विश्लेषणात्मक अध्ययन के अंतर्गत संबंधित श्लोकों के अर्थ, उनके उद्देश्य तथा समाज पर उनके संभावित प्रभावों का गहन परीक्षण किया गया है। विशेष रूप से यह समझने का प्रयास किया गया है कि आहार संबंधी नियमों को क्यों महत्त्व दिया गया और गृहस्थ व्यवस्था में नारी को केंद्र में क्यों स्थापित किया गया। इन प्रश्नों पर तर्कसंगत एवं संदर्भानुकूल विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। तुलनात्मक अध्ययन में विभिन्न स्मृति-ग्रंथों के विचारों को साथ रखकर उनकी समानताओं और भिन्नताओं का विवेचन किया गया है, ताकि यह स्पष्ट हो सके कि नारी की भूमिका और आहार-व्यवस्था के विषय में विभिन्न ग्रंथ किस प्रकार एक-दूसरे से संबंधित या भिन्न दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं। व्याख्यात्मक अध्ययन के माध्यम से उस कालखंड की सामाजिक संरचना और वर्तमान समाज में नारी की स्थिति के बीच संबंध स्थापित करने का प्रयास किया गया है। इस प्रकार यह शोध केवल प्राचीन ग्रंथों के वर्णन तक सीमित नहीं है, बल्कि उनके विचारों को समकालीन संदर्भों में समझने और परखने का प्रयास भी करता है।

बीज शब्द – गृहस्थाश्रम, आहार संयोजन, स्मृति साहित्य, सहधर्मचारिणी।

गृहस्थाश्रम में नारी की भूमिका एवं आहार संयोजन (प्रमुख स्मृतियों के विशेष संदर्भ में)।

आश्रम शब्द संस्कृत के "श्रम्" धातु से निष्पादन हुआ है , जिसका अर्थ है "परिश्रम"। आश्रम का अर्थ है 'जीवन की ऐसी अवस्था है जहाँ मनुष्यों को अपने कर्तव्य ,धर्म एवं लक्ष्यों की पूर्ति करने हेतु प्रयत्न करना चाहिए। सामान्य अर्थ में इसे "विश्राम स्थान " कह सकते हैं। आश्रम व्यवस्था में ही मनुष्यों के जीवन का कर्तव्य आधारित होता है। मनुष्य योनि में जन्म लेने के बाद ही मनुष्यों का परम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति होती है। वैदिक काल से ही जीवन को एक अनंत यात्रा के रूप में देखा जाने लगा, मोक्ष प्राप्ति इस अनंत यात्रा का अंतिम उद्देश्य था। **"शतायुर्वै पुरुषः"**[1]

[1] शुक्ल यजुर्वेद के शपथ ब्राह्मण 13.1.2

अर्थात् – मानव जीवन की आयु सीमा लगभग 100 वर्षों की होती है, अतः इस दीर्घजीवन काल में मनुष्यों को केवल भौतिकता में न जीकर जीवन को ज्ञानवर्धक ,धार्मिक एवं आनंददायक बनाना चाहिए।

इन दीर्घजीवन काल के 100 वर्ष को चार चरणों में विभाजित किया गया है:-

1. ब्रह्मचर्य आश्रम (0-25)
2. गृहस्थ आश्रम (25-50)
3. वानप्रस्थ आश्रम (50-75)
4. संन्यास आश्रम (75-100)

प्रत्येक आश्रमों को 25 वर्षों की अवधि में विभाजित किया गया है।

आश्रम व्यवस्था केवल व्यक्ति विशेष के कल्याण के लिए ना होकर संपूर्ण समाज के कल्याण का हेतु है। अतः यह संपूर्ण मानव जीवन के कल्याण का साधक है।

आश्रम व्यवस्था की नींव वैदिक काल से ही थी, ऋग्वेद 10.85 में विवाह सूक्त का वर्णन है। इस विवाह सूक्त में गृहस्थ आश्रम का संपूर्ण वर्णन किया गया है।

गृह शब्द विशेषतः: 'पत्नी 'अर्थ का वाचक है । गृह का प्रायः अर्थ ईंट -पत्थर से बने मकान का लिया जाता है, परंतु सही अर्थ इसका है "गृहिणी" (पत्नी) के होने से गृह बनता है। गृहस्थ आश्रम में मुख्य भूमिका नारी की है । उसे गृहस्थाश्रम की आत्मा कहा गया है क्योंकि नारी के बिना गृहस्थ की कल्पना करना भी संभव नहीं है। स्कंदपुराण में यथार्थ जीवन का प्रारंभ गृहस्थाश्रम से ही माना गया है, यहीं पर व्यक्ति अपने कर्तव्यों के साथ-साथ ऋणों की पूर्ति करता है। इसी आदर्श को रामायण महाकाव्य में भी बताया गया है,जहाँ माता सीता एवं श्रीराम के दांपत्य जीवन को आधार बनाकर आदर्श जीवन ,त्याग, मर्यादा तथा कर्तव्य की भावना का प्रतिपादन किया गया है।

गृहस्थाश्रम में नारी की भूमिका:-

"पुरुष का जीवन संघर्षों से प्रारंभ होता है और स्त्रियों का आत्मसमर्पण से"। धर्म सूत्रों में नारी को "लक्ष्मी", "सहधर्मणचारिणी" के रूप में उल्लेखित किया गया है। लक्ष्मी के रूप में वह गृहस्थ जीवन को संचालित करती है और वही साधारणचारिणी के रूप में पति के साथ अपने कर्तव्यों का पालन करती है। गृहस्थ आश्रम में नारी की भूमिका केवल आहार पूर्ति तक सीमित न होकर ,वह सामाजिक, धार्मिक तथा नैतिक दायित्वों को भी निभाती है। यथा-

यथा वायुं समाश्रित्य वर्तन्ते सर्वजन्तवः।

तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्तन्ते सर्व आश्रमाः॥[2]

अर्थात् -वायु के आश्रय से ही सजीव प्राणी का जीवन संचालित होता है, इस प्रकार गृहस्थ आश्रम को आधार मानकर अन्य तीन आश्रम स्थित है । यह निर्भरता केवल आर्थिक ना होकर सामाजिक ,धार्मिक एवं नैतिक भी है। यज्ञ, दान ऋणौं की परिपूर्ति जैसे कर्म गृहस्थ आश्रम में नारी की उपस्थिति से ही संभव है क्योंकि ये सभी कर्म नारी के बिना संभव नहीं है। गृहस्थ आश्रम में नारी के संचालन से ही जीवन व्यवस्थित होता है , अतः गृहस्थ आश्रम में नारी के बिना कोई धर्म-कर्म संभव नहीं है। महाभारत के शांति पर्व (अध्याय 259-262) के अंतर्गत मोक्षधर्म पर्व में भीष्म ने युधिष्ठिर को दांपत्य जीवन की नीति का संदेश दिया। जहां भीष्म युधिष्ठिर से कहते हैं कि दांपत्य जीवन के अभाव में मनुष्य इस संसार में धर्म संचय नहीं कर सकता, क्योंकि पुरुषार्थ (धर्म ,अर्थ एवं कम) के लिए पत्नी का होना आवश्यक है, बिना इसके पुरुषार्थ की पूर्ति नहीं की जा सकती। इससे यह स्पष्ट होता है कि "स्त्री गृहस्थी की नींव" है।

पाणिनि ने भी पत्नी का अर्थ बताया है' जो पति के साथ यज्ञ संपन्न करें'। वेदों में नारी को ब्रह्मा की उपाधि दी गई है **"स्त्री ही ब्रह्मा बभूविय "। कुमारसंभवम् (6.13)** में महाकवि कालिदास ने अरुंधति एवं वशिष्ठ के दांपत्य जीवन के माध्यम से शिव और पार्वती के आदर्श प्रेम विवाह का वर्णन किया है। तैत्तिरीय ब्राह्मण में भी कहा गया है "स्त्री के बिना पुरुष धार्मिक पंगु है"।

भारतीय संस्कृति में अर्धनारीश्वर की कल्पना गृहस्थ आश्रम में की गई हैं। अर्धनारीश्वर अर्थात अर्ध नर एवं अर्ध नारी। नर के भाग को शिव(तर्क)कहा गया है तथा नारी के भाग को शक्ति (प्रेम) कहा गया है, जब दोनों तर्क एवं प्रेम मिलते हैं तब सामंजस्य एवं प्रेम बढ़ता है। स्त्री उपभोग की वस्तु न होकर पुरुष की अर्धांगिनी है। वर्तमान समय में अर्धनारीश्वर की सार्थकता यही है कि नर एवं नारी दोनों को समानता का अधिकार हो, एक दूसरे के गुण दोनों को पूर्ण बनाते हैं अगर नर में नारी के गुण आ जाए तो वह दोष न होकर उसकी गुणवत्ता को और बढ़ता है । अतः हिंदी के लेखक प्रेमचंद द्वारा कहा भी गया है- " पुरुष में थोड़ी सी पशुता होती है ,जिसे वह इरादा करके भी हटा नहीं सकता। वही पशुता उसे पुरुष बनती है। विकास के कम से वह स्त्री के पीछे है, जिस दिन वह पूर्ण विकास को पहुंचेगा वह भी स्त्री हो जाएगा।"

प्रायः देखा जाता है कि अगर किसी पुरुष में नारी के गुण आ जाए तो समाज में उसे बहुत शर्मिंदगी का सामना करना पड़ता है तथा समाज के कुछ बुद्धिजीवी उनका शोषण करते हैं। उन्हें कई आपत्तिजनक नाम से पुकारते हैं जैसे- मौगा। मुख्यतः मौगा वर्तमान में अभद्र शब्द के रूप पर प्रयुक्त किया जाता है, परंतु मौगा का अर्थ है "ऐसे पुरुष जो संवेदनशील, दयालु एवं करुणा से युक्त हो"।(वस्तुतः मौगा एक भोजपुरी शब्द है, जो मौगी का पुलिंग वचन है , मौगी अर्थात् स्त्री)। पुरुष में स्त्री के गुण आ जाना कोई अमानक की बात नहीं है। भारतीय सभ्यता में माना गया है कि प्रत्येक पुरुष स्त्री तत्व तथा प्रत्येक स्त्री में पुरुष तत्व का कुछ अंश है। पुरुष एवं स्त्री के गुणों का संतुलन ही जीवन की पूर्णता को दर्शाता है। गृहस्थ आश्रम में नारी की सीमा भोजन बनाने तक सीमित न होकर वह धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक एवं नैतिक कर्तव्यों की आधार भी है। अतः मनुस्मृति में कहा गया है-

"पत्नीं विना न यज्ञो अस्ति न दानं न च होमकः"।[3]

[2] मनुस्मृति 3.77

[3] मनुस्मृति अध्याय 9

अर्थात् – पत्नी के बिना न यज्ञ हो सकता है न दान और ना ही होम। गृहस्थी के लिए स्त्री (पत्नी)का होना अनिवार्य है। धार्मिक अनुष्ठानों के साथ-साथ सामाजिक एवं नैतिक कर्तव्यों की भी मूल स्त्री ही है। वह समाज में संस्कारों को स्थापित करती है, संतानों को नैतिक शिक्षा ,संस्कार एवं सामाजिक व्यवहार सिखाती है। एक माता ही अपनी संतानों की सर्वप्रथम शिक्षिका का होती है , इसी कारण उपनिषदों का मूल मंत्र भी "मातृ देवो भव: है"

स्मृति ग्रंथों में नारी का स्थान

भारतीय संस्कृति में आहार विहार एवं व्यवहार को प्रकट करने में स्मृति ग्रन्थों का स्थान अद्वितीय है। स्मृति ग्रंथों में मानव जीवन के अनिवार्य नियमों की व्याख्या प्रस्तुत है। यथा आहार -विहार, भक्ष्य- अभक्ष्य , धर्म- कर्म इत्यादि। स्मृतियों में समाज को व्यवस्थित करने के अनेकों नियमों का प्रतिपादन किया गया है। यथा मनुस्मृति के रचयिता मनु का मानना है कि सृष्टि की उत्पत्ति एवं विकास स्त्री तथा पुरुष के सानिध्य से हुआ था तथा यह क्रम निरंतर चलता रहेगा। सृष्टि की उत्पत्ति में स्त्रियों का स्थान अतुल्य है, स्त्री सृजनशक्ति की प्रतीक है क्योंकि वह जननी तथा शक्ति को अपने भीतर प्रतिष्ठित करती है। भारतीय जीवन दर्शन में स्त्री को देवी का स्वरूप माना गया है कभी वह क्रोधित होकर काली का रूप धारण करती है तो कभी कोमलता एवं मातृत्व की मूर्ति पार्वती का रूप धारण करती है।

"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः"।

[4]

जहां स्त्रियों का सम्मान किया जाता है वही देवता का वास होता है। और जहां स्त्रियों के साथ हिंसा होती है वहां पर देवता निष्ठुर हो जाते हैं। जहां स्त्रियों को आदर, सम्मान एवं प्रेम मिलता है वहीं पर देवता का वास है।

स्मृति ग्रंथों में गृहस्थ जीवन की नींव ही नारी को माना गया है। नारी गृह कार्य के साथ-साथ सामाजिक सामंजस्य को दर्शाती है, अपने संतानों को नैतिक शिक्षा सहित समाज में योग्य बनती है। नारी गृहस्थ जीवन में पुरुषों का भाग्योदय करती है, परिवार तथा समाज के आधार नारी है। तथा इनकी समृद्धि में नारी की भागीदारी मुख्य है। अपने सद्गुणों के माध्यम से समाज एवं परिवार में सामंजस्य की स्थापना करती है। यही समाज और परिवार स्त्री के विवाह के समय उसे स्त्रीधन प्रदान करता है। स्त्रीधन अर्थात् स्त्री को दिया गया आभूषण ,वस्त्र, धन अथवा अन्य वस्तु।(अर्थात् स्त्री की व्यक्तिगत संपत्ति ही स्त्रीधन है)। इस धन पर स्त्री का एकमत अधिकार होता है ,किसी अन्य व्यक्ति का इस पर कोई अधिकार नहीं है यहां तक की उसकी स्वयं की संतानों का भी नहीं।

पितृमातृभ्रातृदत्तं भर्तृदत्तं तथैव च।

[4] मनुस्मृति 3.56

भ्रातृमातामहादत्तं स्त्रीधनं परिकीर्तितम्[5]॥

अर्थात् -माता-पिता ,भाई, पति एवं समाज द्वारा दिया गया स्त्री को धन "स्त्रीधन" है और इस पर उसका एकमत अधिकार है।

वर्तमान परिपेक्ष में दहेज प्रथा का चलन अत्यधिक बढ़ गया है। मुख्य रूप से स्त्रीधन को ही आधुनिक समय में दहेज जैसी कुप्रथा का नाम दे दिया गया है। दहेज प्रथा में जो भी धन स्त्री के परिवार द्वारा दिया जाता है उसका प्रयोग वर का परिवार मुख्य रूप से करता है। उस दहेज में दी गई वस्तु का प्रयोग स्त्री तो करती है किंतु उस पर उसका अधिकार पूर्ण रूप से नहीं होता है। वर्तमान समय में दहेज एक कुप्रथा के रूप में उभर रही है। जहां दहेज कम या ना मिलने के कारण बेटियों को कितनी परेशानियों का सामना करना पड़ रहा है। उनको मानसिक रूप से प्रताड़ित किया जाता है और कभी-कभी तो मृत्यु भी हो जाती है। जो धन स्त्री का है उसे पर भी उसका अधिकार नहीं देने देते हैं। जो भारत स्त्री को देवी मानता है ,9 दिवस तक नव रात्रि में जिसे पूजा जाता है। वर्तमान समय में उसी भारत में दहेज जैसी कुप्रथा के कारण न जाने कितनी देवियों का प्राणहरण कर लिया जाता है। राष्ट्रीय अपराध अभिलेख ब्यूरो के अनुसार 2022 में दहेज को प्रथा के कारण 6,450 महिलाओं की मृत्यु अथवा हत्या हुई है। भारत में प्रतिदिन 20 महिलाओं की दहेज के कारण मृत्यु हो जाती है।

आहार संयोजन में नारी की भूमिका:- नारी गृहस्थाश्रम की आत्मा है। इससे यह स्पष्ट होता है की नारी केवल भोजन पकाने का कार्य नहीं करती वह आहार के उचित संयोजन एवं पोषण को भी ध्यान में रखकर परिवार को व्यवस्थित रखती है। शुद्ध एवं संतुलित आहार से ही समाज की वृद्धि होती है। भारतीय संस्कृति में आहार व्यवस्था का वर्णन लगभग सभी ग्रन्थों में प्राप्त होता है अतः शुद्ध आहार से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है। शुद्ध एवं सात्विक आहार के द्वारा ही शरीर स्वस्थ और मन अध्यात्म की और प्रवृत्त रहता है। भारतीय नारी सदैव नियमपूर्वक शुद्ध आहार का सेवन स्वयं एवं परिवार के सदस्यों को करवाती है क्योंकि शुद्ध आहार मन की शुद्धिकरण करता है।अतः **"आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः"**।[6]

अर्थात् -आहार की शुद्धि से मन शुद्ध रहता है एवं मन की शुद्धि से स्मरण शक्ति स्थिर रहती है।

प्राचीन काल से ही नारी विशेषतः इस बात का मुख्य ध्यान रखती है कि किस ऋतु में किस प्रकार का आहार का सेवन करना चाहिए। नारी ऋतु के अनुकूल भोजन की व्यवस्था करती है तथा अपने परिवारों को विभिन्न प्रकार के रोगों से निदान प्रदान करवाती है। इस प्रकार नारी केवल भोजन बनाने का कार्य नहीं करती बल्कि वह भोजन की पौष्टिकता का भी ध्यान रखती है। पुरुष तो बाह्य कर्मों का संपादन करता है जैसे- जीविका अर्जन। परंतु स्त्री गृहस्थ की आंतरिक प्रबंधन की धूरी है, वह भोजन व्यवस्था के साथ-साथ परिवार की देखभाल सामाजिक कार्य ,नौकरी एवं नैतिक सांस्कृतिक संस्कारों का विकास करती है। स्त्री अपने इन कर्तव्यों कर्तव्य को करते हुए प्रत्येक माह मासिक धर्म से जूझती है। मासिक धर्म की पीड़ा को सहन करते हुए वह अपने नित्य कर्मों को करती है। अनेक प्रकार की पीड़ा को सहन करते हुए नारी सदैव ही अपने कर्तव्य को करती है। यहां तक की मां बनने के पश्चात् उसे विविध प्रकार की मानसिक चुनौतियों का सामना करना पड़ता है जैसे-

[5] याज्ञवल्क्य स्मृति 2.143-146
[6] छांदोग्य उपनिषद 7.26.2

प्रसवोत्तर अवसाद, चिंता, भावनात्मक अस्थिरता ,आत्म संदेह तथा शिशु की देखभाल से जुड़ा मानसिक दबाव। इन परिस्थितियों में भी नारी अपने परिवार तथा समाज के प्रति अपने कर्तव्यों को निभाती है । अतः मनुस्मृति में कहा गया है-

"उपाध्यायान् दशाचार्य आचार्याणां शतं पिता ।
सहस्रं तु पितॄन् माता गौरवेणातिरिच्यते"।[7]

अर्थात् – एक आचार्य 10 उपाध्यायों के बराबर है, 100 आचार्यों में से एकता श्रेष्ठ है तथा हजारों पिताओं में से एक माता श्रेष्ठ एवं महान होती है।

स्त्री की महानता यही है कि वह अत्यंत परिश्रमपूर्ण होकर स्वयं के कर्तव्यों का निर्वहन करती है। पत्नी के रूप में वह अपने पति के साथ गृहस्थ के कर्तव्यों को संपादित करती है अथवा माता बनाकर अपने संतानों को संस्कार, प्रेम एवं अनुशासन का पाठ पढ़ती है।

भारत संस्कृति में भोजन बनाने के पश्चात् उसे पांच भागों में बांटने की परंपरा सदियों से चली आ रही है। इस परंपरा को पंचमहायज्ञ कहा गया है , इसमें अग्नि, पशु- पक्षियों, अतिथि, पूर्वजों तथा गुरुजनों या ऋषियों को भोजन बनाने के उपरांत अर्पित करते हैं, तब उसके बाद गृहस्थ इसका सेवन करते हैं।

इस प्रकार नारी केवल अपने परिवार का ही पोषण नहीं करती अपितु वह पंचमहायज्ञों द्वारा देवता ,पशु-पक्षी ,अतिथि, पितरों एवं गुरुजनों को भी पोषित करती है। अतः कहा भी गया है-"पंचमहायज्ञ की परंपरा को नारी ने आहर संयोजन के माध्यम से जीवित रखा है।

निष्कर्ष:-

"गृहस्थ आश्रम जीवंत का समाज का मुख्य केंद्र है"। समस्त समाज गृहस्ट आश्रम से साधन की प्राप्ति करता है। भारतीय मनुष्यों ने मानव के जीवन को स्पष्ट करने हेतु गृहस्थ (वैवाहिक जीवन)को गृहस्थ आश्रम से जोड़ा। भारतीय संस्कृत में नारी का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है ।नारी को गृहस्थ की आत्मा माना गया है। स्मृति ग्रंथों में नारी को अत्यंत सम्मान प्राप्त है इसलिए तो मनुस्मृति में कहा गया है – "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः"[8]। अर्थात् जहां नारी का सम्मान होता है वहां देवता वास करते हैं। गृहस्थ आश्रम की आधारशीला ही नारी है, वह न केवल अपने परिवार का समुचित संचालन करती है अपितु धार्मिक अनुष्ठानों ,सामाजिक सामंजस्य एवं नैतिकता को भी दर्शाती है। आहार संयोजन के माध्यम से वह अपने परिवार को पोषित करती है उन्हें स्वस्थ जीवन एवं समाज में समग्र विकास के योग्य बनती है। इसलिए कहा गया है "प्रत्येक सफल पुरुष के पीछे एक स्त्री होती है"। चाहे वह मां के रूप में हो ,पत्नी के रूप में हो, बहन के रूप में हो या फिर बेटी के रूप में हो।

[7] मनुस्मृति 2.145
[8] मनुस्मृति 3.56

स्त्री और पुरुष जीवन रूपी रथ के दो पहिए हैं एक के अभाव में दूसरे का अस्तित्व अधूरा है। भारतीय संस्कृति में नारी का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। नारी स्वयं देवी स्वरूप है। भारतीय आश्रम व्यवस्था में नारी का प्रमुख रूप से वर्णन गृहस्थ आश्रम में मिलता है ,जहां नारी को गृहस्थ आश्रम की आत्मा माना गया है।स्मृति ग्रंथों में नारी को अत्यन्त सम्मान प्राप्त है। इसीलिए तो मनुस्मृति में कहा गया है गृहस्थ आश्रम की आधारशीला ही नारी है। वह न केवल अपने परिवारों को संभालती है ,बल्कि धार्मिक अनुष्ठानों , सामाजिक सामंजस्य एवं नैतिकता को भी दर्शाती है। आहार संयोजन के माध्यम से वह अपने परिवारों को पोषित करती है ,उन्हें स्वस्थ जीवन एवं समाज में समग्र विकास के योग्य बनाती है। इसीलिए तो कहा गया है 'हर सफल पुरुष के पीछे किसी स्त्री का हाथ होता है' और यह बात बिल्कुल सही कही गई है। स्त्रियां संतुलित आहार के साथ-साथ अपने परिवार के धार्मिक, सामाजिक एवं नैतिक विकास में भी सहयोगी है, तथा उन्हें समाज में योग्य, संस्कारित तथा उत्तरदायी नागरिक के रूप में प्रतिस्थापित करती है।नारी और पुरुष जीवन-रूपी रथ के दो पहिए हैं; एक के बिना दूसरे का अस्तित्व अधूरा माना जाता है।"

सन्दर्भ ग्रंथ सूची:-

1.मनुस्मृति-डॉ० उर्मिला रुस्तगी

2.याज्ञवल्क्य स्मृति- प.थानेशचन्द् उप्रेती

3.तैत्तिरीय उपनिषद, गीता प्रेस, गोरखपुर।

4.छान्दोग्य उपनिषद, गीता प्रेस, गोरखपुर।

5.कुमारसम्भवम् – कालिदास, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी ।

6.Kane, P. V. History of Dharmasastra (Ancient and Medieval Religious and Civil Law in India), खंड 1–5, भांडारकर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टिट्यूट, पुणेǰ